* निष्काम कर्म : (कर्मयोग)

भारतीय वाङ्मय का अत्यंत विलक्षण ग्रन्थ, श्रीमद्भगवत्गीता नीतिशास्त्र का सर्वमान्य श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसमें मानव कर्म से जुड़ी विविध समस्याओं की समीक्षा के साथ निष्काम कर्म को नैतिक कर्तव्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। गीता का मूल समस्या कर्तव्याकर्तव्य की है, जिसे अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सामने किंकर्तव्यविमूढ़ता के रूप में प्रस्तुत किया है या और कृष्ण ने निष्काम कर्म के रूप में उसका सार्वभौमिक समाधान प्रस्तुत किया।

— निष्काम कर्म की अपरिहार्यता की कुछ पूर्व मान्यताएँ हैं। इसका उल्लेख निम्न रूप में किया जा सकता है —

⇒ मानव एक दिव्य स्फुलिंग है जो सार्वभौम, अजर व अमर आत्मा का अंश है।

⇒ सृष्टि-चक्र कर्म-नियम से बंधा है। प्रत्येक मनुष्य कर्मानुसार पुनर्जन्म पाने और सुख दुःख भोगने को बाध्य है।

⇒ मनुष्य कर्म किए बिना नहीं रह सकता — यह शरीरधारी की परवशता है। ज्ञानी, भक्त, योगी आदि भी कर्म करने को बाध्य है। प्रत्येक मनुष्य को पूर्व जन्म के से अर्जित संस्कारों के कारण कर्म करना अपेक्षित है।

⇒ शरीर, इन्द्रियाँ, जीवात्मा, प्राणिक चेष्टाएँ और संचित कर्म सभी कर्म के हेतु है। मनुष्य कर्म-फल-भोग में परवश है किन्तु नया कर्म करने को स्वतंत्र है।

Scanned with CamScanner

⇒ ~~फलाशा ही बुरे कर्म का कारण है और यही~~
⇒ फलाशा बुरे कर्मों का कारण है। अतः फलाशा रहित कर्म ही मनुष्य को मोक्ष के तरफ ले जा सकता है। यही कर्म निष्काम कर्म कहलाता है।

v.v.i

गीता के अनुसार निष्काम कर्म नैतिक जीवन का निचोड़ है और यह ऐसी समन्वित दृष्टि का फल है जिसमें ज्ञान और भक्ति, व्यक्ति और समाज, संयास और योग, नियतत्व और अनियतत्व, प्राकृत व अप्राकृत, भक्त और भगवान, ज्ञानी और ब्रह्म के संप्रत्ययों की सम्यक् व्याख्या का आधार बनी है।

मनुष्य के जन्मजन्मांतर के विकास की प्रक्रिया में उसके ज्ञान, भाव व संकल्प के दिव्य बन जाने व ईश्वरवत् हो जाने की प्रथम सीढ़ी निष्काम कर्म ही है। यह शुद्ध ज्ञान, शुद्ध भाव व शुद्ध संकल्प की आस्था का क्रियात्मक स्वरूप है।

निष्काम कर्म का अर्थ है, कर्म को बिना किसी फल की अभिलाषा से करना। जो कर्मफल छोड़ देता है वही वास्तविक त्यागी है। गीता की प्रसिद्ध उक्ति है – तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, कर्म-फल में तुम्हारा कोई अधिकार नहीं; अतः तुम कर्मफल की कामना या फलासक्ति मत करो और न ही तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म न करने में हो।

v.v.v.i
2/47

गीता का प्रतिपाद्य विषय ही ~~कर्मयोग है~~ निष्काम कर्म है जिसे कर्म-योग की भी संज्ञा दी जाती है। द्वितीय अध्याय

Congratulations! Take pride. You are using a Navneet ecobuddy™ product.

18/63

Scanned with CamScanner

भगवान इस प्रकार कहते हैं; "धनंजय, आसक्ति रहित होकर कर्म का पालन करो। कर्म करने में सफलता मिले या असफलता। दोनों में समता की जो मनोवृत्ति है उसे ही कर्मयोग कहते हैं। फिर कहते हैं; योग! कर्मसु कौशलम अर्थात् समत्व बुद्धि रूप योग ही कर्मों से चतुरता है अर्थात कर्म-बन्धन से छूटने का उपाय है। इसलिए अर्जुन को समत्व बुद्धि के लिए ही चेष्टा करने का आदेश दिया गया है; "हे अर्जुन जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों से कर्म योग का आचरण करता है वह श्रेष्ठ है। पंचम अध्याय में अर्जुन के यह पूछने पर कि कर्मों के संन्यास और निष्काम कर्म-योग में कौन उत्तम और कल्याणकारी है श्री कृष्ण कहते हैं, "कर्मों का संयास और निष्काम कर्म-योग यह दोनों ही परम कल्याण करने वाले हैं परन्तु दोनों में निष्काम कर्म-योग श्रेष्ठ है।

सम्पूर्ण गीता कर्तव्य के लिए मानव को प्रेरित करती है। परन्तु कर्म निष्काम भाव अर्थात फल के प्राप्ति के त्याग करके करना परमावश्यक है। यह कर्म कर्म-त्याग नहीं है वरन कर्मों में त्याग है या परार्थ भावना है।

सकाम कर्म मानव को बन्धन की ओर ले जाते हैं। परन्तु निष्काम कर्म इसके विपरित मानव को स्थितप्रज्ञ की अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम सिद्ध होते हैं।

Congratulations! Take pride. You are using a Navneet product.
Scanned with CamScanner

गीता के अनुसार कर्म से संन्यास न लेकर कर्म फल से संन्यास लेना चाहिए। कर्म का प्रेरक फल नहीं च होना चाहिए।

यद्यपि गीता ~~कर्म~~ कर्म फल के त्याग का आदेश देती है फिर भी गीता का लक्ष्य त्याग या संन्यास नहीं है। इन्द्रियों को दमन करने का आदेश नहीं दिया गया है बल्कि उसे ज्ञान या विवेक से नियंत्रित करने का आदेश दिया गया है।*

— निष्काम कर्म का आशय सतोगुणी चेतना से यज्ञ कर्म करना है। यज्ञ का अर्थ त्यागपूर्ण कर्म करना है। वस्तुतः यज्ञ कर्म कर्म न होकर विकर्म है क्योंकि उसमें श्रम और बन्धन नहीं है। इसीलिए निष्काम कर्मी अनेक कर्म करता हुआ भी अकर्मी है। निष्काम कर्म का फल भी मिलता है परन्तु वह फल उसे दिव्यता की ओर ले जाता है, बाँधता नहीं है।

निष्काम कर्म शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन, सभी के लिए है। प्रत्येक मनुष्य अपने स्वधर्म या स्वभाव धर्म के अनुसार कर्म करता हुआ फलाशा त्याग करे तो वह उसका कर्म सहज कर्म है जैसे सूर्य का प्रकाश देना उसका सहज धर्म है। स्वधर्म का अर्थ वह कर्तव्य है जो मनुष्य के निकट अर्थात उसके अस्तित्व के संकेत पर हो। गीता ने मानव को शिक्षक, रक्षक, पोषक तथा सेवक में विभक्त कर स्वभावजन्य कर्म का व्याख्या करता है।

Scanned with CamScanner

गीता मनुष्य को मनोवैज्ञानिक क्षमताओं के अनुसार कर्म करने का उपदेश देती है। संसार में सभी व्यक्ति एक प्रकार के नहीं है। किसी में ज्ञान की प्रधानता है, किसी में भक्तिभावना की प्रधानता है तो किसी में कर्म की प्रधानता है। गीता इन विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए विभिन्न मार्ग बतलाती है। ज्ञान की प्रधानता रखनेवाले व्यक्तियों के लिए ज्ञानमार्ग है, भक्तिभावना में अभिरुचि लेनेवाले व्यक्तियों के लिए भक्तिमार्ग है और कर्म में विश्वास रखनेवाले के लिए कर्ममार्ग है। ये सभी एक ही लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कराते हैं इसमें कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार निष्काम कर्म मनुष्य को क्रमशः स्वार्थ से ऊपर उठाकर परार्थ की ओर उस सीमा तक ले जाता है, जहां उसके संकल्प, ज्ञान और भाव सभी ईश्वरीय हो जाते हैं। इस तरह निष्काम कर्म का उद्देश्य ज्ञान, भक्ति या प्रेम के माध्यम से ईश्वर के लिए कर्म में रूपान्तरित करना है।

श्री अरविन्द के शब्दों में "गीता हमें कर्मों को कामना रहित होकर करना नहीं सिखाती वरन् सब धर्मों को छोड़कर दैवी जीवन का अनुकरण करना एकमात्र परम में शरण लेना सिखाती है और एक बुद्ध, एक रामकृष्ण और एक विवेकानन्द का दैवी कर्म इस उपदेश में पूर्ण सामंजस्य पा जाता है।

Scanned with CamScanner